श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

कपिल गीता प्रथम अध्याय(भा॰म॰ 3.21)

वर्णन करने सांख्य योग का, और देने को ज्ञान ।
गुरु रूप में कपिल मुनि थे, देवहूति शिष्य समान।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्
तृतीयः स्कंधः
॥ अथैकविं(म्)शोऽध्यायः॥

विदुर उवाच

स्वायम्भुवस्य च मनोर्- वं(म्)शः(फ्) परमसम्मतः ।
कथ्यतां(म्) भगवन् यत्र, मैथुनेनैधिरे प्रजाः ॥ 1॥

विदुरजीने पूछा- भगवन् ! स्वायम्भुव मनुका वंश बड़ा आदरणीय माना गया है। उसमें मैथुनधर्म के द्वारा प्रजाकी वृद्धि हुई थी। अब आप मुझे उसीकी कथा सुनाइये।

प्रियव्रतोत्तानपादौ, सुतौ स्वायम्भुवस्य वै ।
यथाधर्मं(ञ्) जुगुपतुः(स्), सप्तद्वीपवतीं(म्) महीम् ॥ 2॥

तस्य वै दुहिता ब्रह्मन्, देवहूतीति विश्रुता ।

पत्नी प्रजापतेरुक्ता, कर्दमस्य त्वयानघ ॥ 3॥

ब्रह्मन् ! आपने कहा था कि स्वायम्भुव मनुके पुत्र प्रियव्रत और उत्तानपादने सातों द्वीपोंवाली पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन किया था तथा उनकी पुत्री, जो देवहूति नामसे विख्यात थी, कर्दमप्रजापतिको ब्याही गई थी ।

तस्यां(म्) स वै महायोगी, युक्तायां(यँ) योगलक्षणैः ।

ससर्ज कतिधा वीर्यं(न्), तन्मे शुश्रूषवे वद ॥ 4॥

देवहूति योगके लक्षण यमादिसे सम्पन्न थी. उससे महायोगी कर्दमजीने कितनी सन्तानें उत्पन्न कीं ? वह सब प्रसङ्ग आप मुझे सुनाइये, मुझे उसके सुननेकी बड़ी इच्छा है।

रुचिर्यो भगवान् ब्रह्मन्, दक्षो वा ब्रह्मणः(स्) सुतः ।

यथा ससर्ज भूतानि, लब्ध्वा भार्यां(ञ्) च मानवीम् ॥ 5॥

इसी प्रकार भगवान् रुचि और ब्रह्माजीके पुत्र दक्षप्रजापतिने भी मनुजीकी कन्याओंका पाणिग्रहण करके उनसे किस प्रकार क्या-क्या सन्तान उत्पन्न की, यह सब चरित भी मुझे सुनाइये ॥ 5 ॥

मैत्रेय उवाच

प्रजाः(स्) सृजेति भगवान्, कर्दमो ब्रह्मणोदितः ।

सरस्वत्यां(न्) तपस्तेपे, सहस्राणां(म्) समा दश ॥ 6॥

मैत्रेयजीने कहा- विदुरजी ! जब ब्रह्माजी ने भगवान् कर्दमको आज्ञा दी कि तुम संतानकी उत्पत्ति करो तो उन्होंने दस हजार वर्षोंतक सरस्वती नदीके तीर पर तपस्या की।

ततः(स्) समाधियुक्तेन, क्रियायोगेन कर्दमः ।

सम्प्रपेदे हरिं(म्) भक्त्या, प्रपन्नवरदाशुषम् ॥ 7॥

वे एकाग्र चित्तसे प्रेमपूर्वक पूजनोपचारद्वारा शरणागतवरदायक श्रीहरिकी आराधना करने लगे।

तावत्प्रसन्नो भगवान्, पुष्कराक्षः(ख्) कृते युगे ।

दर्शयामास तं(ङ्) क्षत्तः(श्), शाब्दं(म्) ब्रह्म दधद्वपुः ॥ 8॥

तब सत्ययुगके आरम्भमें कमलनयन भगवान् श्रीहरिने उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर उन्हें अपने शब्दब्रह्ममय स्वरूपसे मूर्तिमान् होकर दर्शन दिये।

स तं(वँ) विरजमर्काभं(म्), सितपद्मोत्पलस्रजम् ।

स्निग्धनीलालकव्रात-वक्त्राब्जं(वँ) विरजोऽम्बरम् ॥ 9॥

भगवान की वह भव्य मूर्ति सूर्यके समान तेजोमयी थी। वे गलेमें श्वेत कमल और कुमुदके फूलोंकी माला धारण किये हुए थे, मुखकमल नीली और चिकनी अलकावलीसे सुशोभित था। वे निर्मल वस्त्र धारण किये हुए थे।

किरीटिनं(ङ्) कुण्डलिनं(म्), शङ्खचक्रगदाधरम् ।

श्वेतोत्पलक्रीडनकं(म्), मनः(स्)स्पर्शस्मितेक्षणम् ॥ 10॥

सिरपर झिलमिलाता हुआ सुवर्णमय मुकुट,कानोंमें जगमगाते हुए कुण्डल और कर-कमलोंमें शङ्ख, चक्र, गदा आदि आयुध विराजमान थे। उनके एक हाथमें क्रीडाके लिये श्वेत कमल सुशोभित था। प्रभुकी मधुर मुसकानभरी चितवन चित्तको चुराये लेती थी ।

विन्यस्तचरणाम्भोज-मं(म्)सदेशे गरुत्मतः ।

दृष्ट्वा खेऽवस्थितं(वँ) वक्षः(श्)- श्रियं(ङ्) कौस्तुभकन्धरम् ॥ 11॥

जातहर्षोऽपतन्मूर्ध्ना, क्षितौ लब्धमनोरथः ।

गीर्भिस्त्वभ्यगृणात्प्रीति-स्वभावात्मा कृताञ्जलिः ॥ 12॥

उनके चरणकमल गरुड़जीके कंधोंपर विराजमान थे तथा वक्षःस्थलमें श्रीलक्ष्मीजी और कण्ठमें कौस्तुभमणि सुशोभित थी । प्रभुकी इस आकाशस्थित मनोहर मूर्तिका दर्शन करकेकर्दमजीको बड़ा हर्ष हुआ, मानो उनकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो गयीं। उन्होंने सानन्द हृदयसे पृथ्वीपर सिर टेककर भगवान्को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और फिर प्रेमप्रवण चित्तसे हाथ जोड़कर सुमधुर वाणी से वे उनकी स्तुति करने लगे ।

ऋषिरुवाच

जुष्टं(म्) बताद्याखिलसत्त्वराशेः(स्),

सां(म्)सिध्यमक्ष्णोस्तव दर्शनान्नः ।

यद्दर्शनं(ञ्) जन्मभिरीड्य सद्भि-

राशासते योगिनो रूढयोगाः ॥ 13॥

कर्दमजीने कहा-स्तुति करनेयोग्य परमेश्वर! आप सम्पूर्ण सत्त्वगुणके आधार हैं। योगिजन उत्तरोत्तर शुभ योनियोंमें जन्म लेकर अन्तमें योगस्थ होनेपर आपके दर्शनोंकी इच्छा करते हैं; आज आपका वही दर्शन पाकर हमें नेत्रोंका फल मिल गया ।

ये मायया ते हतमेधसस्त्वत्-

पादारविन्दं(म्) भवसिन्धुपोतम् ।

उपासते कामलवाय तेषां(म्),

रासीश कामान्निरयेऽपि ये स्युः ॥ 14॥

आपके चरणकमल भवसागरसे पार जानेके लिये जहाज हैं। जिनकी बुद्धि आपकी मायासे मारी गयी है, वे ही उन तुच्छ क्षणिक विषय-सुखोंके लिये, जो नरकमें भी मिल सकते हैं, उन चरणोंका आश्रय लेते हैं; किन्तु स्वामिन् ! आप तो उन्हें वे विषय-भोग भी दे देते हैं ।

तथा स चाहं(म्) परिवोढुकामः(स्),

समानशीलां(ङ्) गृहमेधधेनुम् ।

उपेयिवान् मूलमशेषमूलं(न्),

दुराशयः(ख्) कामदुघाङ्घ्रिपस्य ॥ 15॥

प्रभो! आप कल्पवृक्ष है। आपके चरण समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं। मेरा हृदय काम-कलुषित है। मैं भी अपने अनुरूप स्वभाव- वाली और गृहस्थधर्मके पालन में सहायक शीलवती कन्यासे विवाह करनेके लिये आपके चरणकमलों की शरणमें आया हूँ ।

प्रजापतेस्ते वचसाधीश तन्त्या,

लोकः(ख्) किलायं(ङ्) कामहतोऽनुबद्धः ।

अहं(ञ्) च लोकानुगतो वहामि,

बलिं(ञ्) च शुक्लानिमिषाय तुभ्यम् ॥ 16॥

सर्वेश्वर! आप सम्पूर्ण लोकोंके अधिपति हैं। नाना प्रकारकी कामनाओंमें फंसा हुआ यह लोक आपकी वेद-वाणीरूप डोरीमें बंधा है। धर्ममूर्ते! उसीका अनुगमन करता हुआ मैं भी कालरूप आपको आज्ञापालनरूप पूजोपहारादि समर्पित करता हूँ।

लोकां(म्)श्च लोकानुगतान् पशूं(म्)श्च,

हित्वा श्रितास्ते चरणातपत्रम् ।

परस्परं(न्) त्वद्गुणवादसीधु-

पीयूषनिर्यापितदेहधर्माः ॥ 17॥

प्रभो! आपके भक्त विषयासक्त लोगों और उन्हींके मार्गका अनुसरण करनेवाले मुझ-जैसे कर्मजड़ पशुओं को कुछ भी न गिनकर आपके चरणोंकी छत्रच्छायाका ही आश्रय लेते हैं तथा परस्पर आपके गुणगानरूप मादक सुधाका ही पान करके अपने क्षुधा-पिपासादि देहधर्मोंको शान्त करते रहते हैं।

न तेऽजराक्षभ्रमिरायुरेषां(न्),

त्रयोदशारं(न्) त्रिशतं(म्) षष्टिपर्व ।

षण्नेम्यनन्तच्छदि यत्त्रिणाभि,

करालस्रोतो जगदाच्छिद्य धावत् ॥ 18॥

प्रभो ! यह कालचक्र बड़ा प्रबल है। साक्षात् ब्रह्म ही इसके घूमनेकी धुरी है, अधिक मासंसहित तेरह महीने अरे हैं, तीन सौ साठ दिन जोड़ हैं, छः ऋतुएँ नेमि(हाल) हैं, अनन्त क्षण-पल आदि इसमें पत्राकार धाराएँ हैं तथा तीन चातुर्मास्य इसके आधारभूत नाभि है। यह अत्यन्त वेगवान् संवत्सररूप कालचक्र चराचर जगत् की आयुका छेदन करता हुआ घूमता रहता है, किंतु आपके भक्तोंकी आयुका ह्रास नहीं कर सकता।

एकः(स्) स्वयं(म्) सं(ञ्) जगतः(स्) सिसृक्षया,

द्वितीययाऽऽत्मन्नधियोगमायया ।

सृजस्यदः(फ्) पासि पुनर्ग्रसिष्यसे,

यथोर्णनाभिर्भगवन् स्वशक्तिभिः ॥ 19॥

भगवन्! जिस प्रकार मकड़ी स्वयं ही जालेको फैलाती उसकी रक्षा करती और अन्तमें उसे निगल जाती है-उसी प्रकार आप अकेले ही जगत् की रचना करनेके लिये अपनेसे अभिन्न अपनी योगमायाको स्वीकारकर उससे अभिव्यक्त हुई अपनी सत्त्वादि शक्तियोंद्वारा स्वयं ही इस जगत् की रचना, पालन और संहार करते हैं।

नैतद्वताधीश पदं(न्) तवेप्सितं(यँ),

यन्मायया नस्तनुषे भूतसूक्ष्मम् ।

अनुग्रहायास्त्वपि यर्हि मायया,

लसत्तुलस्या तनुवा विलक्षितः ॥ 20॥

प्रभो! इस समय आपने हमें अपनी तुलसीमालामण्डित,मायासे परिच्छिन्न-सी दिखायी देनेवाली सगुणमूर्तिसे दर्शन दिया है। आप हम भक्तोंको जो शब्दादि विषय-सुख प्रदान करते हैं, वे मायिक होनेके कारण यद्यपि आपको पसंद नहीं है, तथापि परिणाम में हमारा शुभ करनेके लिये वे हमें प्राप्त हों—

तं(न्) त्वानुभूत्योपरतक्रियार्थं(म्),

स्वमायया वर्तितलोकतन्त्रम् ।

नमाम्यभीक्ष्णं(न्) नमनीयपाद-

सरोजमल्पीयसि कामवर्षम् ॥ 21॥

नाथ! आप स्वरूपसे निष्क्रिय होनेपर भी मायाके द्वारा सारे संसारका व्यवहार चलानेवाले हैं तथा थोड़ी-सी उपासना करनेवालेपर भी समस्त अभिलषित वस्तुओंकी वर्षा करते रहते हैं। आपके चरणकमल वन्दनीय है, मै आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ।

ऋषिरुवाच

इत्यव्यलीकं(म्) प्रणुतोऽब्जनाभस्-

तमाबभाषे वचसामृतेन ।

सुपर्णपक्षोपरि रोचमानः(फ्),

प्रेमस्मितोद्वीक्षणविभ्रमद्भ्रूः ॥ 22॥

मैत्रेयजी कहते हैं- भगवान्‌की भौंहें प्रणय मुसकानभरी चितवनसे चञ्चल हो रही थीं, वे गरुड़जीके कंधेपर विराजमान थे। जब कर्दमजीने इस प्रकार निष्कपटभावसे उनकी स्तुति की तब वे उनसे अमृतमयी वाणीसे कहने लगे।

श्रीभगवानुवाच

विदित्वा तव चैत्यं(म्) मे, पुरैव समयोजि तत् ।

यदर्थमात्मनियमैस्-त्वयैवाहं(म्) समर्चितः ॥ 23॥

श्रीभगवान् ने कहा- जिसके लिये तुमने आत्मसंयमादिके द्वारा मेरी आराधना की है, तुम्हारे हृदयके उस भावको जानकर मैंने पहलेसे ही उसकी व्यवस्था कर दी है ।

न वै जातु मृषैव स्यात्- प्रजाध्यक्ष मदर्हणम् ।

भवद्विधेष्वतितरां(म्), मयि संङ्गृभितात्मनाम् ॥ 24॥

प्रजापते! मेरी आराधना तो कभी भी निष्फल नहीं होती; फिर जिनका चित्त निरन्तर एकान्तरूपसे मुझमें ही लगा रहता है, उन तुम- जैसे महात्माओंके द्वारा की हुई उपासनाका तो और भी अधिक फल होता है।

प्रजापतिसुतः(स्) सम्राण्-मनुर्विख्यातमङ्गलः ।

ब्रह्मावर्तं(यँ) योऽधिवसन्, शास्ति सप्तार्णवां(म्) महीम् ॥ 25॥

प्रसिद्ध यशस्वी सम्राट् स्वायम्भुव मनु ब्रह्मावर्तमें रहकर सात समुद्रवाली सारी पृथ्वीका शासन करते हैं।

स चेह विप्र राजर्षिर्- महिष्या शतरूपया ।

आयास्यति दिदृक्षुस्त्वां(म्), परश्वो धर्मकोविदः ॥ 26॥

विप्रवर ! वे परम धर्मज्ञ महाराज महारानी शतरूपाके साथ तुमसे मिलनेके लिये परसों यहाँ आयेंगे ।

आत्मजामसितापाङ्गीं(वँ), वयः(श्)शीलगुणान्विताम् ।

मृगयन्तीं(म्) पतिं(न्) दास्यत्- यनुरूपाय ते प्रभो ॥ 27॥

उनकी एक रूप-यौवन, शील और गुणोंसे सम्पन्न श्यामलोचना कन्या इस समय विवाहके योग्य है। प्रजापते! तुम सर्वथा उसके योग्य हो, इसलिये वे तुम्हींको वह कन्या अर्पण करेंगे

समाहितं(न्) ते हृदयं(यँ), यत्रेमान् परिवत्सरान् ।

सा त्वां(म्) ब्रह्मन् नृपवधूः(ख्), काममाशु भजिष्यति ॥ 28॥

ब्रह्मन्! गत अनेकों वर्षोंसे तुम्हारा चित्त जैसी भार्याके लिये समाहित रहा है, अब शीघ्र ही वह राजकन्या तुम्हारी वैसी ही पत्नी होकर यथेष्ट सेवा करेगी।

या त आत्मभृतं(वँ) वीर्यं(न्), नवधा प्रसविष्यति ।

वीर्ये त्वदीये ऋषय, आधास्यन्त्यञ्जसाऽऽत्मनः ॥ 29॥

वह तुम्हारा वीर्य अपने गर्भ में धारणकर उससे नौ कन्याएँ उत्पन्न करेगी और फिर तुम्हारी उन कन्याओंसे लोकरीतिके अनुसार मरीचि आदि ऋषिगण पुत्र उत्पन्न करेंगे।

त्वं(ञ्) च सम्यगनुष्ठाय, निदेशं(म्) म उशत्तमः ।

मयि तीर्थीकृताशेष- क्रियार्थो मां(म्) प्रपत्स्यसे ॥ 30॥

तुम भी मेरी आज्ञाका अच्छी तरह पालन करनेसे शुद्धचित्त हो, फिर अपने सब कर्मोंका फल मुझे अर्पणकर मुझको ही प्राप्त होओगे।

कृत्वा दयां(ञ्) च जीवेषु, दत्त्वा चाभयमात्मवान् ।

मय्यात्मानं(म्) सह जगद्- द्रक्ष्यस्यात्मनि चापि माम् ॥ 31॥

जीवोंपर दया करते हुए तुम आत्मज्ञान प्राप्त करोगे और फिर सबको अभय-दान दे अपने सहित सम्पूर्ण जगत्को मुझमें और मुझको अपने में स्थित देखोगे।

सहाहं(म्) स्वां(म्)शकलया, त्वद्वीर्येण महामुने ।

तव क्षेत्रे देवहूत्यां(म्), प्रणेष्ये तत्त्वसं(म्)हिताम् ॥ 32॥

महामुने! मैं भी अपने अंश- कलारूपसे तुम्हारे वीर्यद्वारा तुम्हारी पत्नी देवहूतिके गर्भ में अवतीर्ण होकर सांख्यशास्त्रकी रचना करूँगा।

मैत्रेय उवाच

एवं(न्) तमनुभाष्याथ, भगवान् प्रत्यगक्षजः ।

जगाम बिन्दुसरसः(स्), सरस्वत्या परिश्रितात् ॥ 33॥

मैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! कर्दमऋषिसे इस प्रकार सम्भाषण करके, इन्द्रियोंके अन्तर्मुख होनेपर प्रकट होनेवाले श्रीहरि सरस्वती नदीसे घिरे हुए बिन्दुसर- तीर्थसे(जहाँ कर्दमऋषि तप कर रहे थे) अपने लोकको चले गये ।

निरीक्षतस्तस्य ययावशेष-

सिद्धेश्वराभिष्टुतसिद्धमार्गः ।

आकर्णयन् पत्ररथेन्द्रपक्षै-

रुच्चारितं(म्) स्तोममुदीर्णसाम ॥ 34॥

भगवान् के सिद्धमार्ग(वैकुण्ठमार्ग) की सभी सिद्धेश्वर प्रशंसा करते हैं। वे कर्दमजीके देखते-देखते अपने लोकको सिधार गये। उस समय गरुड़जीके पक्षोंसे जो सामकी आधारभूता ऋचाएँ निकल रही थी, उन्हें वे सुनते जाते थे।

अथ सम्प्रस्थिते शुक्ले, कर्दमो भगवान् ऋषिः ।

आस्ते स्म बिन्दुसरसि, तं(ङ्) कालं(म्) प्रतिपालयन् ॥ 35॥

विदुरजी! श्रीहरिके चले जानेपर भगवान् कर्दम उनके बताये हुए समयकी प्रतीक्षा करते हुए बिन्दु-सरोवरपर ही ठहरे रहे।

मनुः(स्) स्यन्दनमास्थाय, शातकौम्भपरिच्छदम् ।

आरोप्य स्वां(न्) दुहितरं(म्), सभार्यः(फ्) पर्यटन् महीम् ॥ 36॥

तस्मिन् सुधन्वन्नहनि, भगवान् यत्समादिशत् ।

उपायादाश्रमपदं(म्), मुनेः(श्) शान्तव्रतस्य तत् ॥ 37॥

वीरवर ! इधर मनुजी भी महारानी शतरूपाके साथ सुवर्णजटित रथपर सवार होकर तथा उसपर अपनी कन्याको भी बिठाकर पृथ्वीपर विचरते हुए, जो दिन भगवान् ने बताया था, उसी दिन शान्तिपरायण महर्षि कर्दमके उस आश्रमपर पहुँचे।

यस्मिन् भगवतो नेत्रान्-न्यपतन्नश्रुबिन्दवः ।

कृपया सम्परीतस्य, प्रपन्नेऽर्पितया भृशम् ॥ 38॥

तद्वै बिन्दुसरो नाम, सरस्वत्या परिप्लुतम् ।

पुण्यं(म्) शिवामृतजलं(म्), महर्षिगणसेवितम् ॥ 39॥

सरस्वतीके जलसे भरा हुआ यह बिन्दुसरोवर वह स्थान है, जहाँ अपने शरणागत भक्त कर्दमके प्रति उत्पन्न हुई अत्यन्त करुणाके वशीभूत हुए भगवान के नेत्रोंसे आँसुओं की बूँदें गिरी थीं। यह तीर्थ बड़ा पवित्र है, इसका जल कल्याणमय और अमृतके समान मधुर है तथा महर्षिगण सदा इसका सेवन करते हैं।

पुण्यद्रुमलताजालैः(ख्), कूजत्पुण्यमृगद्विजैः ।

सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं(वँ), वनराजिश्रियान्वितम् ॥ 40॥

उस समय बिन्दुसरोवर पवित्र वृक्ष-लताओंसे घिरा हुआ था, जिनमें तरह- तरहकी बोली बोलनेवाले पवित्र मृग और पक्षी रहते थे, वह स्थान सभी ऋतुओंके फल और फूलोंसे सम्पन्न था और सुन्दर वनश्रेणी भी उसकी शोभा बढ़ाती थी।

मत्तद्विजगणैर्घुष्टं(म्), मत्तभ्रमरविभ्रमम् ।

मत्तबर्हिनटाटोप- माह्वयन् मत्तकोकिलम् ॥ 41॥

वहाँ झुंड-के-झुंड मतवाले पक्षी चहक रहे थे, मतवाले भौंरें मंडरा रहे थे, उन्मत्त मयूर अपने पिच्छ फैला फैलाकर नटकी भाँति नृत्य कर रहे थे और मतवाले कोकिल कुहू- कुहू करके मानो एक-दूसरेको बुला रहे थे।

कदम्बचम्पकाशोक-करञ्जबकुलासनैः ।

कुन्दमन्दारकुटजैश्-चूतपोतैरलङ्कृतम् ॥ 42॥

वह आश्रम कदम्ब, चम्पक, अशोक, करञ्ज, बकुल, असन, कुन्द, मन्दार, कुटज और नये-नये आमके वृक्षोंसे अलंकृत था।

कारण्डवैः(फ्) प्लवैर्हं(म्)सैः(ख्), कुररैर्जलकुक्कुटैः ।

सारसैश्चक्रवाकैश्च, चकोरैर्वल्गु कूजितम् ॥ 43॥

वहाँ जलकाग, बत्तख आदि जलपर तैरनेवाले पक्षी हंस, कुरर, जलमुर्ग, सारस, चकवा और चकोर मधुर स्वरसे कलरव कर रहे थे।

तथैव हरिणैः(ख्) क्रोडैः(श्), श्वाविद्गवयकुञ्जरैः ।

गोपुच्छैर्हरिभिर्मर्कैर्-नकुलैर्नाभिभिर्वृतम् ॥ 44॥

हरिन, सूअर, स्याही, नीलगाय, हाथी, लंगूर, सिंह, वानर, नेवले और कस्तूरीमृग आदि पशुओंसे भी वह आश्रम घिरा हुआ था।

प्रविश्य तत्तीर्थवर-मादिराजः(स्) सहात्मजः ।

ददर्श मुनिमासीनं(न्), तस्मिन् हुतहुताशनम् ॥ 45॥

आदिराज महाराज मनुने उस उत्तम तीर्थमें कन्याके सहित पहुँचकर देखा कि मुनिवर कर्दम अग्निहोत्रसे निवृत्त होकर बैठे हुए हैं।

विद्योतमानं(वँ) वपुषा, तपस्युग्रयुजा चिरम् ।

नातिक्षामं(म्) भगवतः(स्), स्निग्धापाङ्गावलोकनात् ।

तद् व्याहृतामृतकला-पीयूषश्रवणेन च ॥ 46॥

बहुत दिनोंतक उग्र तपस्या करने के कारण वे शरीरसे बड़े तेजस्वी दीख पड़ते थे तथा भगवान् के स्नेहपूर्ण चितवनके दर्शन और उनके उच्चारण किये हुए कर्णामृतरूप सुमधुर वचनोंको सुननेसे, इतने दिनोंतक तपस्या करनेपर भी वे विशेष दुर्बल नहीं जान पड़ते थे।

प्रां(म्)शुं(म्) पद्मपलाशाक्षं(ञ्), जटिलं(ञ्) चीरवाससम् ।

उपसं(म्) सृत्य मलिनं(यँ), यथार्हणमसं(म्)स्कृतम् ॥ 47॥

उनका शरीर लम्बा था, नेत्र कमलदलके समान विशाल और मनोहर थे, सिरपर जटाएँ सुशोभित थीं और कमरमें चीर-वस्त्र थे। वे निकटसे देखनेपर बिना सानपर चढ़ी हुई महामूल्य मणिके समान मलिन जान पड़ते थे।

अथोटजमुपायातं(न्), नृदेवं(म्) प्रणतं(म्) पुरः ।

सपर्यया पर्यगृह्णात्-प्रतिनन्द्यानुरूपया ॥ 48॥

महाराज स्वायम्भुव मनुको अपनी कुटीमें आकर प्रणाम करते देख उन्होंने उन्हें आशीर्वाद से प्रसन्न किया और यथोचित आतिथ्यकी रीतिसे उनका स्वागत-सत्कार किया।

गृहीतार्हणमासीनं(म्), सं(यँ)यतं(म्) प्रीणयन् मुनिः ।

स्मरन् भगवदादेश-मित्याह श्लक्ष्णया गिरा ॥ 49॥

जब मनुजी उनकी पूजा ग्रहण कर स्वस्थ- चित्तसे आसनपर बैठ गये, तब मुनिवर कर्दमने भगवान्‌की आज्ञाका स्मरण कर उन्हें मधुर वाणीसे प्रसन्न करते हुए इस प्रकार कहा--

नूनं(ञ्) चङ्क्रमणं(न्) देव, सतां(म्) सं(म्)रक्षणाय ते ।

वधाय चासतां(यँ) यस्त्वं(म्), हरेः(श्) शक्तिर्हि पालिनी ॥ 50॥

देव ! आप भगवान् विष्णुकी पालनशक्तिरूप हैं, इसलिये आपका घूमना-फिरना निःसन्देह सज्जनोंकी रक्षा और दुष्टोंके संहारके लिये ही होता है।

योऽर्केन्द्वग्नीन्द्रवायूनां(यँ), यमधर्मप्रचेतसाम् ।

रूपाणि स्थान आधत्से, तस्मै शुक्लाय ते नमः ॥ 51॥

आप साक्षात् विशुद्ध विष्णुस्वरूप हैं तथा भिन्न-भिन्न कार्योंके लिये सूर्य, चन्द्र, अग्नि, इन्द्र, वायु, यम, धर्म और वरुण आदि रूप धारण करते हैं; आपको नमस्कार है।

न यदा रथमास्थाय, जैत्रं(म्) मणिगणार्पितम् ।

विस्फूर्जच्चण्डकोदण्डो, रथेन त्रासयन्नघान् ॥ 52॥

स्वसैन्यचरणक्षुण्णं(वँ), वेपयन् मण्डलं(म्) भुवः ।

विकर्षन् बृहतीं(म्) सेनां(म्), पर्यटस्यं(म्)शुमानिव ॥ 53॥

तदैव सेतवः(स्) सर्वे, वर्णाश्रमनिबन्धनाः ।

भगवद्रचिता राजन्, भिद्येरन् बत दस्युभिः ॥ 54॥

अधर्मश्च समेधेत, लोलुपैर्व्यङ्कुशैर्नृभिः ।

शयाने त्वयि लोकोऽयं(न्), दस्युग्रस्तो विनङ्क्ष्यति ॥ 55॥

आप मणियोंसे जड़े हुए जयदायक रथपर सवार हो, अपने प्रचण्ड धनुषकी टङ्कार करते हुए उस रथकीघरघराहटसे ही पापियोंको भयभीत कर देते हैं और अपनी सेनाके चरणोंसे रौंदे हुए भूमण्डलको कँपाते अपनी उस विशाल सेनाको साथ लेकर पृथ्वीपर सूर्यके समान विचरते हैं। यदि आप ऐसा न करें तो चोर-डाकू भगवान्‌की बनायी हुई वर्णाश्रमधर्मकी मर्यादाको तत्काल नष्ट कर दें तथा

विषयलोलुप निरङ्कुश मानवोंद्वारा सर्वत्र अधर्म फैल जाय। यदि आप संसारकी ओरसे निश्चिन्त हो जायँ तो यह लोक दुराचारियोंके पंजे में पड़कर नष्ट हो जाय।

अथापि पृच्छे त्वां(वँ) वीर, यदर्थं(न्) त्वमिहागतः ।
तद्वयं(न्) निर्व्यलीकेन, प्रतिपद्यामहे हृदा ॥ 56॥

तो भी वीरवर ! मैं आपसे पूछता हूँ कि इस समय यहाँ आपका आगमन किस प्रयोजनसे हुआ है; मेरे लिये जो आज्ञा होगी, उसे मैं निष्कपट भावसे सहर्ष स्वीकार करूँगा।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्)
सं(म्)हितायां(न्) तृतीयस्कन्धे एकविं(म्)शोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः ॥